द्वितीय अध्याय

"काल-निर्णय एवं युगीन वातावरण"

काल निर्णय

युग की छाया देखने के लिए तिथियाँ महत्वपूर्ण होती हैं । युग की छाया से कवि मिलने के लिए साक्ष्य होता है । उत्तर भारत के सांस्कृतिक व धार्मिक जागरण के प्रणेता सन्त नामदेव की परम्परागत जन्मतिथि 1192 शके तदनुसार ईस्वी सन् 1270 व निर्वाण तिथि शके 1272 [ईस्वी सन् 1350] सन्त नामदेव के काल निर्णय के लिए अन्तः साक्ष्य के रूप में उनका स्वजन्म-विषयक अभंग उद्धृत किया जाता है । हिन्दी पदों में जन्म सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं ।

बहि : साक्ष्य के रूप में :-

[अ] संत ज्ञानेश्वर व सन्त नामदेव की समकालीनता ।

[आ] नामदेव के समकालीन सन्तों की रचनाएं ।

उनकी जन्मतिथि विषयक मराठी अभंग के अनुसार कार्तिक शुक्ल एकादशी, रविवार शालिवाहन शक 1192, प्रभव संवत्सर में नामदेव का जन्म प्राकृतिक रूप में हुआ । उनकी पत्रिका के आधार पर 80 वर्ष की आयु तक शतकोटि अभंग करने की प्रतिज्ञा को पूरा करते हुए नामसंकीर्तन ही उनके जीवन का लक्ष्य होगा । तदनुसार उनकी जन्मतिथि में 80 वर्ष जोड़ने पर उनकी निर्वाण तिथि शक 1272 [ई० सं० 1350] सिद्ध होती है ।[1]

---

1. माझे जन्मपत्र बापा जी ब्राह्मणे । लिहिले त्याची खूण सांगे ऐका ।
अधिक ब्याण्णव गणित करावते । उगवता आदित्य रोहिणीशी ।
शुक्ल एकादशी कार्तिकी रविवार । प्रभवसंवत्सर शालिवाहन शके ।
प्रसवली माता मज मम्मुखी । तेव्हां जिव्हेवरी लिहिले देव ।
शतकोटि अभंग करील प्रतिज्ञा । नाममन्त्र खूण बाबुनी पाहे ।
ऐंशी वर्षे आयुष्य पत्रिका प्रमाण । नामसंकीर्तन मामया बुद्धी ।।
नामदेव गाथा - अभंग - 1240

अभंग चिकित्सा

पंचांग की कसौटी पर इस अभंग की परीक्षा करने पर शक-1192 में प्रभव संवत्सर नहीं होता अपितु प्रमोद संवत्सर है अतः विद्वानों ने अनेक नवीन तिथियों व विचारों की उद्भावना की ।

श्री ल॰ पा॰ जोशी ने प्रमोद संवत्सर पाठ को ग्रहण करते हुए शक 1185 को श्री नामदेव की जन्मतिथि निश्चित करते हुए श्री रा॰ रा॰ मुंगी द्वारा तैयार जन्मकुंडली भी प्रमाण स्वरूप दी है ।[1]

श्री भाऊराज ने "गणित अकरावरी" के स्थान पर "अधिक सव गणित तेरा शतें" ऐसा स्वतः उद्भूत काल्पनिक पाठ सुझाकर नामदेव का जन्मकाल शके 1309 माना है और इसी तिथि को मान्यता देने के लिए उन्होंने ज्ञानेश्वर व नामदेव को समकालीन मानते हुए दोनों के समय को 100 वर्ष आगे बढ़ा दिया ।[2]

श्री भिंगारकर ने श्री भाऊराज के मत का खंडन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि "सम्प्रदाय शुद्ध वारकरी लोगों के मुख से प्रमोद ही उच्चरित होता है । दोनों के प्रथम अक्षर "प्र" होने से हस्तदोष से प्रमोद के स्थान पर प्रभव लिखना सम्भव है । मूल शुद्ध पाठ का निश्चय शक, महीना, पक्ष तिथि, वार इन पाँचों के आधार पर किया जाना चाहिए अतः केवल संवत्सर के नाम के लिए पाँचों बातों में परिवर्तन व मूल पाठ में संशोधन उचित नहीं ।[3] इस प्रकार उन्होंने श्री ल॰ पा॰ जोशी व श्री भाऊराज के मतों को खंडित किया ।

---

1. श्री ल॰ पा॰ जोशी - पंजाबातील नामदेव - पृ॰ 14, 15
2. श्री भाऊराज - सुधारक (मासिक) पृ॰ 5 - दिसम्बर, 1931
3. "एकट्या संवत्सराच्या नावाकरिता या पाचहि गोष्टी फिरविणे अगदी असमंजस होय" - श्री र॰ भिंगारकर - श्री महासाधु ज्ञानेश्वर महाराज व यांचा काल निर्णय व संक्षिप्त चरित्र - लेख - पृ॰ 4

श्री हे० वि० इनामदार ने अभंगवर्णित सभी बातों का विस्तार से विचार करते हुए अभंग को प्रामाणिक माना है। उनका स्पष्ट मत यह है कि नामदेव द्वारा ही अपने आयुष्य के उत्तरार्ध में पत्रिका के आधार पर इस अभंग की रचना की गई होगी - और इस अभंग में संवत्सर के नाम में अशुद्धि या भूल नामदेव द्वारा भी सम्भव है। अतः मूल अभंग में ही अशुद्ध शब्द का प्रयोग हुआ हो।[1]

वैसे कालनिर्णय के लिए सामान्यतः शक और संवत् दोनों का ही निर्देश करते हुए पंचांग तैयार किये जाते हैं। पंचांग की कसौटी पर कसने पर इस अभंग में केवल संवत्सर भिन्न है। श्री अ०य०ग०बोडि ने अपने ज्योतिष शास्त्र के आधार पर एक कुंडली तैयार कर यह सिद्ध किया है कि शके 1192 अर्थात् ई० स० 1270 ही नामदेव की जन्मतिथि माननी चाहिए क्योंकि कुंडली द्वारा उनके जीवन की प्रमुख घटनाएं प्रमाणित होती हैं। यह कुंडली प्रथम बार नामदेव गाथा में प्रकाशित हुई।[2]

नामदेव के इस अभंग को प्रामाणिक मानते हुए शके 1192 ई०स० 1270 को नामदेव का जन्मकाल का समर्थन करनेवाले मराठी विद्वान् सुप्रसिद्ध दार्शनिक रा० द० रानडे,[3] श्री ल०रा० पांगारकर[4] श्री तुलपुले,[5] सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[6] डा० रामकुमार वर्मा[7] तथा

- -

1. डा० हे० वि० इनामदार - सन्त नामदेव - पृ० 31

   "आयुष्यातील उत्तरार्धात आपल्या पत्रिकेचे वर्णन करताना।
   नामदेवांच्या हातून संवत्सराच्या नावात चूक होण्याची शक्यता आहे।

2. नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रकाशन - पृ० 910
3. डा० आर० डी० रानडे - Mysticism in Maharashtra - पृ० 185
4. मराठी वाङ्मयाचा इतिहास - पृ० 555
5. पाँच सन्त कवी - पृ० 137
6. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० 68
7. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ० 217

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त[1] सन्तसाहित्य के मर्मज्ञ श्री परशुराम चतुर्वेदी[2] तथा आचार्य विनयमोहन शर्मा[3] डा० भगीरथ मिश्र[4] श्री.री. के प्रसिद्ध विद्वान डा० मैकालिफ[5] श्री मैक्डानल[6] सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद[7] तथा आदि सभी महाराष्ट्र की परम्परा समर्थित तिथि को मान्य करते हैं।

पंजाबी परम्परा में मान्य बाबा भगतराम जी के अनुसार सन् 1370 तथा श्री धीतिधर शास्त्री को मान्य सन् 1363 तथा गार्सा द तासी के अनुसार 1278 ईस्वी प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में आधारहीन है।[8]

इसी तिथि को मान्य करने से ज्ञानदेव और नामदेव की समकालीनता की भी पुष्टि होती है।

<u>नामदेव व ज्ञानदेव की समकालीनता</u>

नामदेव के काल निर्णय के लिए सबसे पुष्ट व प्रामाणिक आधार है। नामदेव द्वारा रचित ज्ञानेश्वर के चरित्र सम्बन्धी "आदी" "तीर्थावली" व "समाधि" प्रकरणों से इसकी पुष्टि होती है।

सबसे प्रामाणिक व पुरातन श्री. एकनाथकृत "नामदेव चरित्र" में नामदेव के समकालीन सन्तों में परिसा भागवत, दासी जनाबाई व गुरु

- -

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ० 197
2. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा - पृ० 110
3. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ० 106
4. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पृ० 31
5. डा० मैकालिफ - सिक्ख रिलीजन - भाग-6 पृ० 18
6. श्री एम० ए० मैक्डानल - हिस्टॉरिकल पास्ट - पृ० 229
7. मध्ययुग का इतिहास - ईश्वरीप्रसाद - पृ०
8. डा० मिश्र व मौर्य - सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पृ० 30

विसोबाखेचर का उल्लेख है । विसोबा खेचर का गुरु रूप में वर्णन सन्त नामदेव की मराठी [1] व हिन्दी रचनाओं में हुआ है ।[2] परिसा भागवत की भूमिका तो "ज्ञानी ज्ञानदेव अज्ञानी नामदेव" की है । नामदेव की दासी जनाबाई के अनेक अभंगों में नामदेव का वंश, जीवन की अन्य घटनाओं का उल्लेख हुआ है ।

दूसरा प्रमाण यह है कि ज्ञानेश्वरी का कृतिकाल ज्ञानेश्वरी के ही साक्ष्य से शक 1212 है । फिर भी विद्वानों ने इस प्रश्न को विवादग्रस्त बनाया ।

मराठी आलोचक "श्री भारूराज ने "सुधारक पत्र" में अपने 16 लेखों" द्वारा भाषा की भिन्नता के आधार पर दो ज्ञानदेवों की कल्पना कर उन दो ज्ञानदेवों में डेढ़-दो सौ वर्षों का अन्तर अनुमानित करते हुये नामदेव के जन्मकाल सम्बन्धी अभंग का भी पाठ परिवर्तन कर शक 1309 माना है और अभंगकर्ता ज्ञानेश्वर को नामदेव का समकालीन माना है ।[3] श्रीमान् भिंगारकर व पं० पांडुरंग शर्मा ने सप्रमाण उनके तर्कों का खंडन किया है ।[4]

प्रा० वा० ब० पटवर्धन ने भाषा विज्ञान के आधार पर नामदेव की भाषा को अर्वाचीन बताते हुए नामदेव का जन्मकाल ज्ञानेश्वर से एक शतक आगे माना है । डा० भाण्डारकर ने भी नामदेव के मराठी और हिन्दी पदों की भाषा को अर्वाचीन बताते हुए उनका काल आगे बढ़ाया [5]

- -

1० सुखाचा सद्गुरु खेचर । स्वयम साक्षात्कार दाखविला ।
नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रकाशन - अभंग - 1378

2० खेचर जी के चरणों पर नामा सिमिटि लागा ।
डा० मिश्र व मौर्य सम्पादित - सं०ना०हि०प० - पद - 184

3० श्री भारूराज - सुधारक लेख - ज्ञानदेव व नामदेव समकालीन होते काय ?

4० श्री भिंगारकर - श्री साधु ज्ञानेश्वर महाराज व पोथा कालनिर्णय व संक्षिप्त परिचय

5० डा० रा०गो० भाण्डारकर - Vaishanavism and Shaivesm and other Minor Religious Systems - पृ. 92

डा॰ भाण्डारकर के आक्षेपों का सप्रमाण खंडन श्री डा॰ हे॰ वि॰ इनामदार[1] डा॰ रामकुमार वर्मा[2] और डा॰ ह॰ के॰ आठवर[3] ने कर उन्हें निराधार सिद्ध किया है ।

इस सम्बन्ध में एक अन्य हिन्दी विद्वान् "डा॰ मोहनसिंह दीवाना" ने अपनी पुस्तक 'भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी, नई पदावली" में नामदेव के काल को सन् 1370 से 1450 तक खींचना चाहा, वे इसके लिए नामदेव का एक मृत गाय को जिलाने सम्बन्धी पद तथा दीवाना जी "अनन्तानन्द जी की हस्तलिखित पोथी का उद्धरण देते हुए नामदेव को रामानन्द का शिष्य बताकर उन्हें कबीर का समकालीन बताते हैं । इन सभी अनुमानों का आचार्य विनयमोहन शर्मा ने सप्रमाण खंडन करते हुए नामदेव को ज्ञानदेव का समकालीन माना है ।[4]

नामदेव के हिन्दी पदों में कबीर का उल्लेख होने से[5] अन्य कुछ विद्वानों ने नामदेव और कबीर के परिचय को सम्भव माना है । भक्ति साहित्य के विद्वान् श्री आर॰ डी॰ रानडे ने नामदेव की उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा के समय नामदेव की कबीर से भेंट की सम्भावना को व्यक्त किया है[6] पर समय की दृष्टि से कबीर परवर्ती सिद्ध होते हैं अतः यह भेंट सम्भव नहीं । ऐसा निष्कर्ष विद्वानों ने निकाला है ।[7]

- -

1. सन्त नामदेव [मराठी प्रबन्ध] पृ॰ 36-40
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰ 239
3. हिन्दी निर्गुण - काव्य का आरम्भ और नामदेव की हिन्दी कविता - पृ॰ 70-71
4. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ॰ 106
5. चन्द्रभागा बालवंट पर कबीरा धूम मचाई ।
   -- सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 189
6. Pathway to God in Hindi Literature - Page. 44
7. डा॰ श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ॰ 53

नामदेव एक या अनेक

इस विषय पर काल निर्णय के अन्तर्गत विचार करना उचित होगा क्योंकि आद्य नामदेव के काल सम्बन्धी विवाद उत्पन्न होने का कारण महाराष्ट्र में उनके बाद अनेक "नामदेव" नामधारी कवि हुये हैं। इसके अतिरिक्त नामदेव के अभंगों में भी विभिन्न नाम मुद्राओं के कारण यह विवाद विषय बना। आलोचकों ने कई नामदेवों को सन्त नामदेव के साथ सम्बद्ध किया है।[1]

1. ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव
2. विष्णुदास नामा
3. नामा पाठक
4. नामदेव शिंपी
5. नेमदेव
6. स्वामन्त नामा
7. बालक्रीडा कर्ता नामदेव
8. हिन्दी पदों के कर्ता पंजाबी नामदेव।

नामदेव के मराठी अभंगों व हिन्दी पदों में विष्णुदास नामा की छाप युक्त अनेक पद संकलित हैं। अतः विष्णुदास नामा की कविता का मिश्रण अधिक होना सम्भव है। गाथा अभंग रूप में है। स्वतन्त्र मुक्तक रचना में नाम सादृश्य के कारण अन्य कवियों की रचना का मेल होना सम्भव है। सन्त नामदेव और विष्णुदास नामा दो भिन्न व्यक्ति हैं जिनमें लगभग दो शताब्दियों का अन्तर है। विष्णुदास नामा अपने को विप्र या पण्डित कहता था और वह पौराणिक आख्यानों का कवि है। श्री भावे के अनुसार विष्णुदास नामा का समय सन् 1678 ईस्वी है[2] तथा श्रीमती सरोजिनी

- -

1. आचार्य विनयमोहन शर्मा - विश्वभारती पत्रिका खण्ड-6 द्वितीय अंक
2. प्रो. आर. डी. रानाडे - Mysticism in Maharashtra पृ. 288

शेंडे ने ज्ञानेश्वर कालीन वारी विठ्ठल भक्त नामदेव को नेमदेव, विष्णुदास नामा, नामा पाठक, नामा शिंपी, यादवस नामा सभी से भिन्न माना है ।[1] बालक्रीडा कर्ता नामदेव के अभंगों की भाषा भी अर्वाचीन है और उनके ग्रन्थ के आरम्भ में 14 वीं शती के कविरा पिता उर्फ कविश्रेष्ठ का उल्लेख होने से यह आद्य नामदेव से भिन्न है ।

ज्ञानेश्वरकालीन महाराष्ट्रीय सन्त नामदेव ही हिन्दी पदों के कर्ता पंजाबी नामदेव हैं जिनके 61 पद गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं। मराठी अभंगों तथा गुरु ग्रन्थ साहिब के हिन्दी पदों में नामदेव के चरित्र विषयक आख्यायिका, जन्मस्थान, वंश, जाति, गुरु-नाम, आराध्यदेवता विठ्ठल, पंढरपुर, तत्त्वज्ञान, प्राचीन भक्तों की कथाओं के संदर्भ व भावधारा, मराठी के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग आदि की समानता के आधार पर विद्वानों ने दोनों की अभिन्नता को सिद्ध किया है ।[2] अतः श्री आर.डी. रानाडे की दो नामदेवों की कल्पना[3] निराधार है ।

---

1. श्रीमती सरोजिनी शेंडे - नामदेवांच्या एकानेकत्वाची चर्चा - "लेख" श्री नामदेव दर्शन, पृ. 103
2. (अ) शंकर पुरुषोत्तम जोशी - पंजाबातील नामदेव - पृ. 13 से 51
   (आ) डा० भगीरथ मिश्र व राजनारायण मौर्य -
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली
   (इ) प्रा. व.दा. कुलकर्णी - श्री सन्त नामदेवांची हिन्दी रचना - मराठी लेख - मराठी स्वाध्याय संशोधन पत्रिका - अंक-5, 1970
   (ई) आचार्य विनयमोहन शर्मा - साहित्य नया, पुराना - पृ. 155-154
   (उ) डा. श. के. आडकर - हिन्दी निर्गुण काव्य का आरम्भ व सन्त नामदेव की हिन्दी कविता
3. श्री आर. डी. रानाडे - Pathway to God in Hindi Literature - Page-44

निष्कर्ष :

इस सम्पूर्ण विवेचन के पश्चात् नामदेव के कथन को प्रामाणिक मानते हुए ज्ञानदेव और नामदेव की समकालीनता के आधार पर उनकी जन्म-तिथि ई० स० 1270 (शक 1192) तथा निर्वाण तिथि सन् 1350 (शक 1272) ही सिद्ध होती है । यही समय अन्तः साक्ष्य व बहिः साक्ष्य से समर्थित होने से सर्वमान्य है ।

कबीर का काल

निश्चित ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सन्त कबीर के काल का निर्णय करना कठिन है । सन्त कबीर ने अपने बारे में मौन धारण किया है ।

गुरु परसादी जैदेव नामा

कबीर की रचनाओं में इस एक पंक्ति के सिवा कहीं भी उनके जीवनकाल का संकेत नहीं मिलता । अतः आलोचकों ने इस उद्धरण द्वारा कबीर का काल निश्चित करने का प्रयास किया है । इस पंक्ति से कबीर जयदेव और नामदेव के परवर्ती सिद्ध होते हैं । ऊपर हमने नामदेव का समय (1270 – 1350) निश्चित किया है ।

पद पर आधृत जन्मतिथि – निर्णय

पन्थ की परम्परा को सुरक्षित रखनेवाले ग्रन्थों में से "कबीर चरित्र बोध" के इस पद के आधार पर कबीर का जन्म चौदह सौ पचपन विक्रमी, ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा को प्रमाणित होता है ।[1] जिसे कबीरदास के

- -

1. चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए ।
   जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए ।
   घन गरजे दामिनि दमके, बूँदे बरषैं झर लाग गए ।
   लहर तालाब में कमल खिले, तहँ कबीर भानु प्रगट हुए ।
   – कबीर चरित्र बोध – स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित – पृ० 6

उत्तराधिकारी धर्मदास द्वारा रचित कहा जाता है । श्री श्यामसुन्दर दास के मत में गणना करने से संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को नहीं पड़ती अतः इस पद के "चौदह सौ पचपन साल गए" का अर्थ उस वर्ष का व्यतीत होना लेकर उनका जन्म संवत् 1456 माना है ।[1] इस मत का समर्थन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल [2] डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी [3] भी करते हैं ।

डा॰ रामकुमार वर्मा इस तिथि की सत्यता गणित के आधार पर स्वीकार करते हैं ।[4] डा॰ माताप्रसाद गुप्त ने इण्डियन क्रोनोलोजी (एल॰ आर॰ पिल्ले उम्पी) के आधार पर यह स्पष्टतः निरूपित किया है कि ज्येष्ठपूर्णिमा को चन्द्रवार या सोमवार ही पड़ता है ।[5] अतः संवत् 1455 ही अर्वाचीन आलोचकों व विद्वानों द्वारा मान्य है । डा॰ सरनामसिंह शर्मा के शब्दों में "किसी गवेषणात्मक निर्णय के अभाव में प्रसिद्धि को स्वीकार न करना अनुशासन के शासन को स्वीकृति देना है ।[6] अतः डा॰ गोविन्द त्रिगुणायत [7] डा॰ गणपतिचन्द्र गुप्त [8] डा॰ कृष्णा रैणा,[9] डा॰ रामनिवास चंडक[10] आदि सभी भावी अनुसंधानकाल पर्यन्त इसी लोक प्रसिद्ध तिथि को मान्य करते हैं ।

---

1. डा॰ श्यामसुन्दर दास – कबीर ग्रन्थावली – पृ॰ 16
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास – पृ॰ 75
3. डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य – पृ॰ 77
4. डा॰ रामकुमार वर्मा – सन्त कबीर – पृ॰ 56
5. डा॰ रामकुमार वर्मा – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – पृ॰ 241
6. डा॰ सरनामसिंह शर्मा – कबीर एक विवेचन – पृ॰ 27
7. डा॰ गोविन्द त्रिगुणायत – कबीर की विचारधारा – पृ॰ 31
8. डा॰ गणपतिचन्द्र गुप्त – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–पृ॰ 201
9. डा॰ कृष्णा रैणा – हिन्दी निर्गुण सन्त काव्य, दर्शन और भक्ति – पृ॰ 32
10. डा॰ रामनिवास चंडक – कबीर जीवन और दर्शन – पृ॰ 4

इनके काल निर्णय का दूसरा आधार कबीर और उनके गुरु रामानन्द की समकालीनता का है ।

<u>कबीर और रामानन्द की समकालीनता</u>

कबीर के काल निर्णय में उनके गुरु रामानन्द के समय निर्धारण द्वारा कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया गया है पर दुर्भाग्य से रामानन्द का समय भी प्रामाणिक तथ्यों की अपेक्षा अनुमानों पर अधिक आधारित है ।

रामानन्द की जन्म तिथि अगस्त्य संहिता के अनुसार तथा अगस्त्य संहिता के बाद के परिशिष्ट भविष्योत्तर खण्ड के अनुसार सन् 1299 { संवत् 1356 } मानी गई है ।

भक्त कवियों के पुरातन चरित्र ग्रन्थ भक्तमाल में रामानन्द को "बहुकाल वपुधारिके" इस उक्ति के आधार पर दीर्घायु बताया गया है । सन् 1299 { सं० 1356 } मानने से सन्त पीपा { सं० 1482 } को स्वामी रामानन्द का शिष्य मानने में अड़चन होती है । अतः यह तिथि नहीं मानी जा सकती ।[1]

श्री सम्प्रदाय के श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में स्वामी रामानन्द का 5 वाँ स्थान है । डा० त्रिगुणायत चार पीढ़ियों के लिए 300 वर्षों का समय अनुमानित करते हुए रामानन्द का जन्म सं० 1385 मानते हैं । डा० रामकुमार वर्मा "प्रसंग पारिजात" के अनुसार रामानन्द की निधन तिथि सं० 1505 मानते हैं । इस प्रकार रामानन्द का समय संवत् 1385-1505 माना जा सकता है ।[2] इस तिथि को स्वीकार करने से कबीर रामानन्द के समकालीन माने जा सकते हैं । और कबीर को सिकन्दर लोदी व गुरु नानक व स्वामी रामानन्द के समकालीन मानने में कोई रुकावट नहीं आती ।

- -

1• डा• रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-पृ•244
2• डा• रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
पृ• 245-246

यह बात प्रसिद्ध है कि कबीरदास सिकन्दर लोदी के समय में हुये थे और उन्हीं के अत्याचारों के कारण उन्हें काशी छोड़कर मगहर जाना पड़ा । सिकन्दर लोदी का राज्यकाल सन् 1517 (संवत् 1574) से सन् 1526 (सं० 1583) तक माना जाता है । ब्रिग्स के अनुसार यह भेंट संवत् 1553 में हुई थी ।[1]

रेवरेंड वेस्टकॉट के अनुसार नानक जब 27 वर्ष के थे तब कबीरदास जी से उनकी भेंट हुई थी । गुरुनानक पर कबीरदास का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है गुरु नानकदेव ने कबीर की अनेक साखियों व पदों को "आदिग्रन्थ" में उद्धृत किया है । अतः गुरु नानक का समय (संवत् 1526 से 1596) माना जाता है ।[2]

कबीर की निधन तिथि

बहिः साक्ष्य व जनश्रुति पर आधारित सन्त कबीर की 4 निधन तिथियाँ प्रसिद्ध हैं । सं० 1505, 1549, 1575, 1569 इन चारों में से कोई भी तिथि ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं है । केवल संवत् 1575 में अनन्तदास की परचई के अनुसार कबीरदास जी ने 120 वर्ष की आयु पाई थी अतः उनकी जन्मतिथि संवत् 1455 (1398 ई० स०) में 120 वर्ष जोड़ने पर संवत् 1575 (1518 ई० स०) ही आता है ।[3] यही कबीर का काल मानना पड़ता है ।

निष्कर्ष

इस विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नामदेव का काल ई०स० 1270 से 1350 व कबीर का काल 1398 से 1518 ई० सन् निश्चित होता है जिससे यह सिद्ध होता है कि कबीर का जन्म नामदेव

---

1. डा० सरनामसिंह शर्मा – कबीर एक विवेचन – पृ० 27
2. डा० श्यामसुन्दरदास – लेख – विजयेन्द्र स्नातक द्वारा सम्पादित कबीर" में संकलित – पृ० 10
3. डा० सरनामसिंह शर्मा – कबीर एक विवेचन – पृ० 27

की मृत्यु के कम 40 वर्ष बाद हुआ और नामदेव काल दृष्टि से पूर्ववर्ती व कबीरदास परवर्ती सिद्ध होते हैं । दोनों कवियों का काल सामान्य रूप से 14 वीं शतक मान्य करना पड़ता है और दोनों का प्रभाव काल 14 वीं तथा 15 वीं शती स्वीकार किया जा सकता है ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस समय देश की केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होने के कारण राजनीतिक स्थिति अति अस्थिर थी । सम्राट हर्षवर्धन के बाद कोई केन्द्रीय शक्तिशाली राजा न रहा । हिन्दू राजवंशों का सत्ता-संघर्ष तथा मुस्लिम आक्रमण के साथ मुस्लिम सत्ता की स्थापना इस युग की प्रमुख घटनाएं है ।

वैसे भारत पर 7 वीं शती से ही अरबों द्वारा किए आक्रमण अधिकतर राजनीतिक व सैनिक थे । पर उनके पश्चात् किये जानेवाले मुसलमानों के आक्रमण धर्म तथा संस्कृति के प्रसार के लक्ष्य से किये गये थे । मुहम्मद गोरी व गजनवी के आक्रमण इसके प्रमाण है । गजनवी ने तो सम्पूर्ण भारत को मिटाना चाहा था। जिसका वर्णन अलबेरूनी नामक इतिहासकार ने लिखा है ।[1] डा॰ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इस युग की समीक्षा करते हुए लिखा है कि 'भारत की हरीभरी भूमि, चिरसंचित लक्ष्मी तथा जनाकीर्ण देश ने मुसलमानों को भी आकृष्ट किया । यहां उन्हें धर्म प्रचार व राज्य-विस्तार दोनों की सम्भावना दिखाई दी[2] और यही कारण है कि 'इस्लाम ने भारत के समस्त कुफ्र को तोड़ डालने की प्रतिज्ञा के साथ भारत में पदार्पण किया ।[3]

उत्तर में सन् 1263 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली के सिंहासन को अधिकृत कर गुलाम वंश के राज्य की नींव डाली । यही दिल्ली का प्रथम बादशाह कहलाता है । कहा जाता है कि वह धर्मान्ध शासक था और इस्लाम

- -

1. अलबेरूनीज इण्डिया - पृ॰ 11-19
2. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय - पृ॰ 66
3. डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य - पृ॰ 99

को अस्वीकार करनेवालों को मरवा दिया था । इस वंश का राज्य सन् 1287 तक रहा । पर राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप सत्ता खिलजी वंश के हाथों में चली गई ।

प्रथम खिलजी शासक जलालुद्दीन खिलजी सन् 1290 में गद्दी पर बैठा परन्तु अल्प कालोपरान्त उसके भतीजे अलाउद्दीन खिलजी ने उसका वध कर स्वयं सत्ता हस्तगत कर ली । इसने 1316 ई॰ स॰ तक राज्य किया इसीके काल में दक्षिण पर मुसलमानी आक्रमण हुवे । उसके पश्चात् उसके पुत्र मुबारक शाह (1316 - 1320 ई॰ स॰) तक राज्य किया और इसी काल में दक्षिण के स्वतन्त्र राज्य मुसलमानी सत्ता के अन्तर्गत आ गये । काल दृष्टि से इन्हीं खिलजी शासकों का युग सन्त नामदेव का युग था ।[1]

वैसे उत्तर भारत में मुसलमान शासन शताब्दियों से प्रभाव डाल रहा था पर वह विन्ध्य व नर्मदा को लाँघ न सका था अतः दक्षिण में यादव, विजयनगर, बहमनी के स्वतन्त्र राज्य थे । मध्य व दक्षिण के इतिहास में 4 थी से 8 वीं शताब्दी तक पल्लव साम्राज्य, 6 ठी से 9 वीं शताब्दी तक चालुक्य, पल्लव, पाँड्यो तथा 10, 11 वीं शती तक राष्ट्रकूटो और 12 वीं शती से चौदहवीं शती के पूर्वार्ध तक यादव वंश के स्वतन्त्र राज्यों का अस्तित्व रहा है ।[2]

यादव वंशीय शासन की स्थापना श्री भिल्लम ने सन् 1187 में कल्याणी के चालुक्यों को परास्त कर इस स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की इसकी राजधानी देवगिरि थी । यह बड़ा शूर तथा महत्वाकांक्षी था । भिल्लम के पश्चात् क्रमशः जैतपाल सिंघण यादव, कृष्ण या हरदेव यादव, महादेव, आमनदेव तथा रामदेव यादव नामक राजाओं ने सन् 1294 तक राज्य किया ।

1॰ श्री रघुनाथ महाराज भुजारी - पूर्वपीठिका - मराठी लेख - नामदेव दर्शन - पृ॰ 3

2॰ डॉ श्रीराम शर्मा - दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - पृ॰ 3-4

इसी रामदेव यादव का अलाउद्दीन खिलजी ने पराभव कर इस राज्य को अपने राज्य में मिला लिया । इसी रामदेव यादव के काल में सन्त नामदेव का जन्म दक्षिण में हुआ । यद्यपि अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद रामदेव यादव के पुत्र शंकरदेव तथा दामाद हरपालदेव ने पुनः स्वतन्त्र राज्य की सत्ता को स्थापित किया पर सन् 1317 में मुबारक खिलजी ने हरपालदेव को मारकर इस हिन्दू राज्य को समाप्त कर मुस्लिम साम्राज्य का अंग बना लिया । इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि नामदेव के आयुष्य के पूर्वार्द्ध में दक्षिण में देवगिरि के यादवों का स्वतन्त्र राज्य था और उत्तरार्द्ध में दक्षिण में भी मुस्लिम सत्ता की स्थापना हो चुकी थी ।[1]

इस खिलजी वंश को समाप्त कर गियासुद्दीन तुगलक ने सन् 1321 में तुगलक वंश की स्थापना की । उसके पश्चात् मुहम्मद तुगलक { 1325-1351 } का शासन जनता के लिए बड़ा कष्टप्रद रहा । राजधानी परिवर्तन, फारस विजय, ताम्रसिक्कों का प्रचलन, मानवों की सामूहिक हत्या आदि घटनाएं जनता के लिए अशान्ति तथा दुःख का कारण बनी । मुहम्मद तुगलक के पश्चात् धर्मान्ध फिरोजशाह तुगलक का शासन आरम्भ हुआ जिसने राज्य सत्ता के बल पर इस्लाम के प्रचार के लिए हिन्दू जनता पर नाना अत्याचार किये, मूर्तियों को नष्ट भ्रष्ट किया जाता था, हिन्दुओं की खाल उतरवाकर उसमें भुस भरवाई जाती थी । इन्हीं परिस्थितियों में तैमूर { स० 1328 } का नृशंस आक्रमण हुआ । प्रसिद्ध इतिहासकार ईश्वरी प्रसाद ने उस नृशंस युद्ध और लूटपाट का रोमांचकारी चित्र अंकित किया है । जिससे जन-जीवन भयभीत व निराश हो गया था ।[2]

तुगलक वंश के उपरान्त दिल्ली का शासन सूत्र सैयद व लोदी वंश के हाथों में चला गया । बहलोल लोदी ने स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया

- -

1. श्री अनन्त दीनानाथराव - नामदेव-कालीन सांस्कृतिक परिस्थिति - मराठी लेख - नामदेव दर्शन में प्रकाशित - पृ० 26

2. ईश्वरी प्रसाद - मध्ययुग का इतिहास - पृ० 330-339

पर सिकन्दर लोदी की कुत्सित धर्मान्धता के उल्लेख इतिहास में मिलते हैं। कहते हैं कि वह एक दिन में पन्द्रह सौ हिन्दुओं की हत्या करवा देता था।[1] इसी सिकन्दर लोदी ने कबीर पर भी अत्याचार किये। कबीर ने स्वयं इस अत्याचार का वर्णन किया है।[2] कबीर साहिब की परचई" आदि ग्रन्थों में सिकन्दर लोदी के अत्याचारों का वर्णन है। इससे सन्त कबीर सिकन्दर लोदी के समसामयिक सिद्ध होते हैं। लोदी वंश के राज्य की समाप्ति बाबर द्वारा हुई जिसने सन् 1526 में सत्ता हस्तगत कर मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

इस प्रकार इन 300 वर्षों की अवधि में 5 राजवंशों का राज्य राजनीतिक स्थिति की अस्थिरता का सूचक है। दूसरे शब्दों में यह मुस्लिम सत्ता के क्रमिक उत्थान और पतन का युग था। सभी मुस्लिम शासकों की राज्य विस्तार की नीति के साथ धर्म प्रसार की नीति के कारण राजसत्ता व धर्मसत्ता एक रूप हो गई थी। सभी शासकों ने धार्मिक दमन का आश्रय लिया अतः इस काल के साहित्य व संस्कृति को मुस्लिम शासकों की धार्मिक दमन की प्रवृत्ति, राज्यविस्तार व युद्ध की प्रवृत्ति, ऐश्वर्य वृद्धि एवं विलासिता की प्रवृत्ति ने सबसे अधिक प्रभावित तथा उत्प्रेरित किया।[3] इन्हीं राजनीतिक परिस्थितियों के कारण सामाजिक वातावरण भी प्रभावित हुआ।

सामाजिक वातावरण

मुस्लिम शासकों की धर्मान्धता के कारण हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था अधिक दुरूह हो, समाज की प्रगति में बाधक सिद्ध हो रही थी।

---

1. टिटस – इण्डियन इस्लाम – पृ० 11–12
2. डा० रामकुमार वर्मा – सन्त कबीर – पृ० 187
3. डा० गणपतिचन्द्र गुप्त – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – पृ० 149

प्राचीनकाल से वर्णाश्रम व्यवस्था ही हिन्दू समाज का दृढ़ स्तम्भ रही । वर्ण के आधार पर विकसित इस वर्ण व्यवस्था में कर्म के आधार पर जातियों का जन्म हुआ । वर्ण का चुनाव वैयक्तिक था तथा कर्म के विभाजन पर आधृत यह वर्ण व्यवस्था समाजोन्नति में सहायक थी । उसके बाद जन्म के अनुसार जाति का निश्चय होने लगा । इस युग में जन्म के आधार पर हिन्दू समाज में अनेक जातियाँ, उपजातियाँ बन गईं । जीविकाओं के आधार पर जातियों के नाम रखे गये । जीविकाएं वंशानुक्रम से मानी जाती थी तभी तो नामदेव और कबीर अपनी वंशानुक्रम जाति छीपी तथा जुलाहा जाति का अनेक स्थानों पर उल्लेख करते हैं । जातिगत भेद भाव बहुत बढ़ गये थे । विभिन्न जातियों में स्पृश्यास्पृश्य और ऊँच-नीच की भावना पैदा हुयी । विशेषतः निम्न जातियाँ अन्याय व अत्याचार का शिकार थीं । उनका मन्दिर में प्रवेश निषिद्ध था । सन्त नामदेव को मन्दिर में देवमूर्ति के सामने कीर्तन करने नहीं दिया ।[1] सन्त कबीर को कई ऐसे अवसरों पर लोगों से जूझना पड़ा । अतः इस काल के सभी सन्तों ने वर्णाश्रम व्यवस्था के मूल पर आघात कर जाति व्यवस्था का सबल विरोध किया । सब एक ही ज्योति से उत्पन्न हुये हैं । ब्राह्मण और शूद्र का भेदभाव व्यर्थ है ।[2]

इस वर्ण व्यवस्था के दृढ़ होने से मनुष्य-मनुष्य की छाया से घृणा करने लगा । वर्णसंकरता जाति के लिए घोर अभिशाप समझी जाती थी, अतः

- -

1. हसत खेलत तेरे देहुरे आया ।
        भक्ति करत नामा पकरि उठाया ।
   हीनड़ी जाति मेरी जादम राइआ ।
        छीपे के जनमि काहे कउ आइआ ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 216
2. एक जोति तै सब उतपना, को ब्रह्मन को को सूदा ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद - 57

हिन्दू और मुसलमानों का जातिगत संघर्ष बहुत बढ़ गया था । अतः इस युग के इन सन्त कवियों ने समाज सुधारक बन हिन्दी मुस्लिम एकता का प्रचार किया । इनमें प्रमुख नामदेव, रामानन्द, कबीर, दादूदयाल, आदि सन्त थे । सन्त कबीर ने बड़ी निर्भीकता से हिन्दू धर्म के गढ़ काशी में हिन्दुओं से पूछा —

> जौ तू बाँभन बाँभनी जाया
> तौ आन बाट है क्यों न आया ।[1]

और उन सत्ताधारी मुस्लिम जाति के पक्षपातियों से भी प्रश्न किया —

> जो तू तुरक तुरकनी जाया,
> भीतर खतना क्यों न कराया ।[2]

और यही नहीं अपितु

> "जाति पाँति पूछै नहि कोय,
> हरि को भजै सो हरि का होय ।"

कह भक्ति के आधार पर इन सन्तों ने मानव-मात्र की समानता व एकता का सिद्धान्त स्थापित किया ।

मुस्लिम समाज विजयी जाति होने से विलासिता का जीवन व्यतीत करने लगे थे । बड़े-बड़े अब न सामन्त व प्रसिद्ध योद्धा न रहकर पदाभिलाषी सामन्त बन गये थे । उनके जीवन में उच्च आदर्श नहीं थे अतः विलासिता के कारण आचरण भ्रष्टता बढ़ रही थी, नैतिकता का पतन हो रहा था । रूपवती स्त्रियों का अपहरण, राजाओं के दरबार में अनेक स्त्रियों का रखा जाना विलासिता के प्रमाण है ।[3] अधिकारियों की इसी विलासिता वृत्ति और सामाजिक रीति-रिवाजों के फलस्वरूप समाज में नारी आदरणीय न रह

- -

1. श्यामसुन्दरदास - कबीर ग्रन्थावली - पद - 41
2. श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रन्थावली - पद - 42
3. डा॰ प्रह्लाद मौर्य - कबीर का सामाजिक दर्शन - पृ॰ 363

बढ़ी तथा हिन्दू समाज में भी पर्दा प्रथा, बालविवाह, सती प्रथा आदि को प्रश्रय मिला ।[1] इस प्रकार यहाँ की दो प्रधान जातियाँ हिन्दू और मुस्लिम दोनों के जातीय जीवन में अनेक सामाजिक दुर्बलताएँ मद्यपान, द्यूत क्रीड़ा, वेश्यावृत्ति घर कर गई थी जिसके कारण नैतिकता का पतन हो रहा था ।

संक्षेप में सामाजिक वातावरण की समीक्षा के निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जाति के आधार पर विभिन्न वर्गों का निर्माण, हिन्दू और मुसलमानों में जातिगत संघर्ष, विलासिता के कारण नैतिकता का पतन आचरण-हीनता आदि से समाज अधोगति की ओर जा रहा था अतः इस वातावरण को सुधारने के लिए ही इन क्रान्तिकारी सन्तों व विचारकों का आविर्भाव हुआ ।[2] जिनके साहित्य में हमें एक सामान्य धर्म पद्धति, मिथ्याडम्बरों का विरोध, वर्ण व्यवस्था की उपेक्षा, विलासिता के प्रति घृणा की भावना, सदाचरण की महत्ता पर जोर आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है ।[3] और इन सन्तों ने सामाजिक विषमता को दूर करने का प्रयत्न किया । इस व सामाजिक विषमता के लिए उस काल की धार्मिक परिस्थिति ही कारणीभूत थी ।

धार्मिक वातावरण

इस युग की धार्मिक परिस्थिति बड़ी विषम व शोचनीय थी । मुसलमान शासकों की धर्मान्धता तथा सामाजिक विषमता के कारण जहाँ एक ओर विजेता और विजित धर्म में संघर्ष हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू धर्म अनेक मत मतान्तरों में विभक्त हो गया था । शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन व नाथ ये सब मत अपने मूल रूप से परिवर्तित होकर अनेक सम्प्रदायों, उपसम्प्रदायों में विभाजित हो गये थे ।

---

1. डा॰ श्यामबाला गोयल - भक्तिकालीन राम और कृष्ण काव्य की नारी भावना - पृ॰ 22
2. डा॰ प्रह्लाद मौर्य - कबीर का सामाजिक दर्शन - पृ॰ 66
3. डा॰ गोविन्द त्रिगुणायत - कबीर की विचारधारा - पृ॰ 81

वास्तव में यह सम्प्रदायों का काल था । प्रत्येक सम्प्रदाय की साधना व बाह्याचार भिन्न है । पृथक रहने की प्रवृत्ति के कारण इन मतों में पारस्परिक संघर्ष भी होते थे । सन्तसाहित्य के प्रारम्भिक काल में शैवों, वैष्णवों तथा शाक्तों में संघर्ष चल रहा था । तभी तो कबीर वैष्णवों की छपरी को शाक्तों के गांव की अपेक्षा भला कहते हैं ।[1] क्योंकि उस युग में शाक्त मत अपनी वाम साधना के कारण हेय समझा जाता था ।

इस काल में समस्त उत्तर भारत में तान्त्रिक विचारधारा के रूप में शैव और शाक्त मतों की प्रचुरता दिखाई देती है । शैव समाज में पाशुपत, कापालिक व अघोर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई और शाक्तों में आनन्द भैरवी, भैरवीचक्र व सिद्धिमार्ग जैसे अपनी साधना पद्धति को गुप्त रखनेवाले पन्थों व सम्प्रदायों का प्रभाव समाज पर बढ़ रहा था ।[2]

बौद्ध धर्म भी अनेक उपसम्प्रदायों महायान, हीनयान वज्रयान आदि में विभाजित हो गया था उनमें भी बाह्याडम्बर व गुप्त साधनाओं का प्रचार हो गया था । बौद्धों के कर्मकाण्ड से त्रस्त होकर सिद्धों ने इस धर्म को वज्रयान विचारधारा के आधार पर "सहज साधना" के रूप में जन्म दिया था । बौद्ध साधना का विकृत रूप सहजयान में दिखाई देता है ।[3] ये चौरासी वज्रयानी सिद्ध बौद्धधर्म की ही महायान शाखा का विकसित रूप था ।[4]

जैन धर्म भी कठोर आचार-विचार, संसार से विरक्ति की प्रवृत्ति के कारण यद्यपि उनकी साधना में गुप्त साधनाओं का प्रवेश न हो सका पर उनके धर्म में भी पूजा पद्धति का कर्मकांड व अन्धविश्वासों का प्रवेश हो गया था । इनमें भी श्वेताम्बर दिगम्बर आदि सम्प्रदायों की सृष्टि होने लगी थी।[5]

---

1. वैष्णो की छपरी भली ना साकत को बड गांव - कबीर ग्रन्थावली - पृ. 52.
2. आ. परशुराम चतुर्वेदी - सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत - पृ. 18
3. डा. कृष्णलाल हंस - हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - पृ. 56
4. डा. धर्मवीर भारती - सिद्ध साहित्य - पृ. 99
5. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत - पृ. 18

इस प्रकार सच्ची साधना का लोप होता जा रहा था । हिन्दू साधनाओं का वाममार्ग तथा दक्षिणमार्ग से दो प्रकार का विभाजन हो गया था । 6 ठी से 11 वीं शताब्दी तक वाममार्गी साधना को अपनाने वाले नास्तिक पन्थ सहजयान, वज्रयान, निरंजन पंथ आदि का बोलबाला था ।[1] गुप्त साधनाओं, पाखंड, बाह्याडम्बर के कारण ये नास्तिक धर्म पद्धतियों के फलस्वरूप धर्म का व्यापक रूप न रहा, धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियाँ, अन्धविश्वास जनता में प्रचलित हो गये थे । समाज में अनैतिकता का प्रचार बढ़ रहा था । अतः इस युग में सहजयान जैसे नास्तिक मत के दूषित प्रभाव की प्रतिक्रिया स्वरूप आचारयुक्त नाथपंथ का उदय उत्तर भारत में हुआ ।[2] इस समय तक मुस्लिम प्रभुत्व की स्थापना होने से मुस्लिम धर्म व संस्कृति भारत के अंग बन चुके थे । इस्लाम भी अपनी राज्यशक्ति के बल पर तत्कालीन धर्मों के लिए एक चुनौती बन गया था अतः वैदिक और अवैदिक मतों का सामंजस्य कर गुरु गोरखनाथ ने अपने महान् व्यक्तित्व से नाथपंथ को नया रूप व नई शक्ति दी । इस पंथ के साधुयोगी सारे देश में घूम-घूम कर इसका प्रचार कर रहे थे । उनके मतों व साधनाओं का समस्त भारत में व्यापक प्रचार हुआ । इस पंथ ने साधना के मार्ग में पतंजलि के योग शास्त्र का सहारा लेकर हठयोग को अपनाया और अन्तः साधना पर बल दिया । सदाचार के महत्व की प्रतिष्ठा की ।

इस युग की दक्षिण की धार्मिक स्थिति उत्तर की अपेक्षा अच्छी कही जा सकती है क्योंकि 13 वीं शताब्दी तक दक्षिण भारत मुस्लिम आक्रमणों के प्रभाव से अछूता रहा । सन् 1296 में अलाउद्दीन खिलजी का प्रथम आक्रमण देवगिरि हुआ पर वह स्थायी प्रभाव नही डाल सका ।

---

1. डा. सरनामसिंह शर्मा - कबीर एक विवेचन- 98
2. डा. कृष्णलाल हंस - हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - पृ. 56

उस युग में महाराष्ट्र में यादव वंशियों ने वैदिक धर्म को प्रोत्साहन दिया । इन यादव राजाओं ने मध्ययुगीन स्मार्त पैराणिक धर्म को दृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इन्होंने अपने राज्य में वैदिक ब्राह्मण शास्त्री व पण्डितों को आश्रय दिया । शाङ्र्गदेव, हरिपाल-देव, लक्ष्मीधर, हेमाद्रिपन्त, बोपदेव आदि संस्कृत के धुरन्धर पण्डित यादवों के ही आश्रित थे । इसी काल में धर्म शास्त्रकार हेमाद्रि ने "चतुर्वर्ग चिन्तामणि" लिखकर वर्णाश्रम धर्म को मान्यता दी, अनेक व्रतों व कर्मकाण्डों का विधान किया जिसका प्रभाव आज भी महाराष्ट्र की जनता पर है । इन यादव राजाओं ने निम्न जातियों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया ।[1] सामाजिक विषमता के फलस्वरूप महाराष्ट्र में तत्कालीन युग में जनता को प्रभावित करनेवाले नाथ, महानुभाव वारकरी और दत्त सम्प्रदाय थे । इनमें नाथपन्थ का सम्पूर्ण महाराष्ट्र में व्यापक प्रभाव था। इसी नाथ पन्थ का इसी काल में विभिन्न कारणों से वारकरी सम्प्रदाय में विलय हो गया ।[2] हमारे आलोच्य कवि सन्त नामदेव इसी वारकरी सम्प्रदाय के आद्य प्रचारक माने जाते हैं ।

इसी युग में दक्षिण में भक्ति का पुनरुत्थान हुआ । क्योंकि उत्तर भारत में शैव, शाक्त मतों के प्रभाव तथा मुस्लिम आक्रमणों से वैष्णव भक्ति धारा क्षीण होकर शास्त्रीय परम्परा का आधार लेकर दक्षिण में विकसित हो रही थी । यद्यपि इस वैष्णव भक्ति की स्थापना गीता में हो चुकी थी । [illegible] दक्षिण में इस भक्ति को अपनानेवाले शैव व वैष्णव भक्त "आळवार" और "नायन्मार" भक्त थे । जैसे आठवीं शती में वैदिक कर्मकाण्ड के विरोध में तथा बौद्धों और जैनों के नास्तिकवाद के प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न आचार्य शंकर द्वारा अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना द्वारा हुआ । उन्होंने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखे वेद विरुद्ध समझनेवाले

---

1. श्री रघुनाथ महाराज भुसारी, पूर्वपीठिका - (मराठी लेख) श्रीनामदेव दर्शन में प्रकाशित - पृ. 17 से 25
2. आचार्य विनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ. 64

मतों का खंडन किया । शंकराचार्य का यह मत "अद्वैत दर्शन" नाम से भी जाना जाता है । इसका तत्कालीन युग पर व्यापक प्रभाव पड़ा ।

शंकर परम्परा में एक ओर नाथ पन्थ में निर्गुण परक ईश्वर की भावनाओं को अपनाया गया जिससे निर्गुण भक्ति का विकास हुआ तो दूसरी ओर दक्षिण के वैष्णवाचार्यों द्वारा इस "अद्वैत" की तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप सगुणभक्ति की प्रतिष्ठा हुई, शंकर के अद्वैत दर्शन द्वारा पौराणिक वैष्णव भक्ति का विरोध होता था अतः 11 वीं से 15 वीं शताब्दी तक चार महान् वैष्णवाचार्यों श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य व विष्णुस्वामी ने उसी प्रस्थानत्रयी का आधार लेकर सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया । इनके द्वारा प्रवर्तित श्री सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदा, सनक सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदायों के रूप उत्तर भारत में इसी काल में निर्मित हुए । [1]दक्षिण में सुरक्षित व विकसित भक्ति परम्परा ने उत्तर भारत की धार्मिक स्थिति पर प्रभाव डाला । इस तरह वैष्णवाचार्यों में इन धार्मिक आन्दोलनों द्वारा हिन्दू धर्म के सुधार के प्रयास चल रहे थे । इनमें श्री सम्प्रदाय की परम्परा में पाँचवीं पीढ़ी के अन्तर्गत स्वामी रामानन्द के शिष्य हमारे आलोच्य कवि सन्त कबीर थे ।

सामान्य जनता वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रतिपादित धर्म और दर्शन के शास्त्रीय स्वरूप को संस्कृत भाषा के कारण समझने में असमर्थ थी और धर्म के प्रसारक पीर-पैगम्बर, पंडे-पुजारी, महन्त-योगी सभी जनता को दिग्भ्रष्ट कर रहे थे । हिन्दू और मुस्लिम दोनों ने ही अपने ईश्वर को मन्दिर और मस्जिद की सीमा में बाँध लिया था । ब्राह्मण छापा तिलक लगाकर जनता को धोखे में डाल रहे थे तो मुसलमानों के सैयद काजी और मजारों द्वारा अपने हित साधन में संलग्न थे । जैन साधु अपनी सिद्धियों के चमत्कार से जनता को पाखंड में फंसाकर बहकाते थे । जोगी भी शरीर में

---

1. डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृष्ठ - 210

विभूति लगा जटा धारण कर मंत्रों के बल पर जनता को आतंकित करते थे । इन्हीं परिस्थितियों में सामान्य जन को तज्जन्य दुष्परिणामों से बचाने के प्रयत्न स्वरूप सन्त मत का उदय हुआ ।[1] इन सन्त कवियों ने इस विषम स्थिति में जन भाषा हिन्दी का आश्रय लेकर धार्मिक नेतृत्व सम्भाला । उन्होंने धर्म की सीमाओं को भ्रममात्र सिद्ध किया । उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को समानरूपेण ग्राह्य धर्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया । विरोध व विद्वेष उत्पादक कर्मकाण्डों का विरोध किया । धर्म के नाम पर प्रचलित सभी बाह्याडम्बरों, अन्धविश्वासों का खंडन किया । इन सन्तों ने मानव मात्र की एकता और समानता का उद्घोष कर धर्मनिरपेक्ष मानव समाज की एकता का शिलान्यास किया । विश्वधर्म की कल्पना को साकार रूप दिया । आज उन्हीं सन्त कवियों की दूरदर्शिता के फलस्वरूप ही आज के धर्मनिरपेक्ष स्वतन्त्र गणतन्त्र भारत की स्थापना हुई । इन सन्तों की अनिर्वचनीय सत्ता में पूरी आस्था थी। उनका दृष्टिकोण व्यापक व उदार था । वे विचार स्वातन्त्र्य को प्रधानता देनेवाले थे । इन सन्तों ने व्यक्तिगत अनुभूति व स्वचिन्तन के आधार पर बाह्याडम्बर की जटिलता को दूर कर आध्यात्मिक जीवन के सरल मार्ग का उपदेश दिया । नैतिक आचरण पर बल देकर कथनी व करनी में पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर सामाजिक विषमता को दूर कर साम्यभाव की प्रतिष्ठा की ।[2]

काल की इसी पार्श्वभूमि पर हमारे आलोच्य कवि सन्त नामदेव और सन्त कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण हुआ अतः आगामी अध्याय में उनका विहंगावलोकन किया जायेगा ।

---

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत - पृ. 25
2. आ. परशुराम चतुर्वेदी - सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत - पृ. 22